हिंदुस्तान का प्रधानमंत्री बनने के लिए, हिन्दी में अभिव्यक्ति करनी होती है

डॉ॰ अनुपमा तिवारी
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, हिन्दी
अलायंस विश्वविद्यालय, बंगलोर
फोन – 8886995593/8142623426
ईमेल – anupama.tiwari@alliance.edu.in

(अपनी योग्यता और कर्मठता से हिन्दी को वैश्विक स्तर पर समृद्ध करने वाले डॉ पद्मेश गुप्त जी सहजता की प्रतिमूर्ति हैं। जो सरलता उनके व्यक्तित्व में है वही तल्लीनता आपके साहित्य में परिलक्षित होती है। हिन्दी साहित्यिक संस्थाओं को बढ़ाने में योगदान, भारतीय संस्कृति के प्रति समर्पण की भावना पद्मेश जी के व्यक्तित्व को विशिष्ट बनाती है। प्रस्तुत है अनुपमा तिवारी के साथ पद्मेश गुप्त जी से साक्षात्कार के कुछ अंश)

प्रश्न : हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने की जो एक मुहिम चल रही है, इस संकल्प को कितनी सफलता मिल सकती है ? भारत की राष्ट्र भाषा मात्र हिन्दी ही क्यों ? कोई अन्य भारतीय भाषा क्यों नहीं ?

जवाब : हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने की जो मुहिम है या संयुक्त राष्ट्र में हिन्दी को स्थापित करने की जो एक उत्कंठा या प्रयत्न है, मुझे लगता है कि हिन्दी के प्रति जो उनका प्रेम है, हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रति जो उनका सम्मान है, यदि वह भाषा राष्ट्र भाषा बन जाती है तो यह गर्व की बात होगी, उनकी भाषा को एक पहचान मिलेगी। निष्पक्ष रूप से मैं यह कहना चाहूँगा कि जब तक बॉलीवुड और हम भारतीय मूल के लोग विश्व भर में फैले हुये हैं तब तक हिन्दी का परचम अमर ही रहेगा। वह राष्ट्र भाषा बने या न बने परंतु उसकी लोकप्रियता की अभिवृद्धि सतत होती रहेगी। दूसरी बात जब हम सरकार की ओर देखते हैं या यह जानते हैं कि सरकार हिन्दी के लिए क्या कर रही है या उसे करना क्या चाहिए तो मैं यह समझता हूँ कि हिन्दी भाषा सरकार की प्राथमिकता संभवत: नहीं रहेगी और न कभी रही है। अगर इसका ऐतिहासिक दृष्टिकोण आप देखें तो पहले राजभाषा संस्कृत हुआ करती थी, उसके बाद आम भाषा के रूप में हिन्दी विकसित हुई। मुगल साम्राज्य के समय उर्दू या फारसी राजभाषा के रूप में रही। उसके बाद अङ्ग्रेज़ी आई तो उसने राजभाषा का स्थान लिया और आज भी सरकार और राज की भाषा अङ्ग्रेज़ी ही है। हिन्दी हमेशा से आम लोगों की भाषा रही है। हिन्दी एक प्रकार से कुछ नई भाषा है। पहले उसे पाली व प्राकृत के रूप में जाना जाता था। यहाँ तक की एक सैद्धांतिकी यह भी है जिसे मैं मानता हूँ की यदि उदाहरणार्थ - आप रामायण का युग लीजिये तो उस समय हिन्दी संभवत: वानरों की भाषा रही होगी। जब हम राम व सीता की बात करते हैं तो वे अवतारी पुरुष थे, उनका संवाद संस्कृत में हुआ करता था, हिन्दी तब भी वहां नहीं थी। अभिप्राय यह है कि हिन्दी हमेशा से आमजन कि भाषा रही है। मुख्य बात यह है कि आप हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाएँ या न बनाएँ , उसे संसद की भाषा बनाएँ या न बनाएँ , लेकिन आज भी हिंदुस्तान का प्रधानमंत्री बनने के लिए व्यक्ति को हिन्दी में अभिव्यक्ति करनी होती है उन्हें हिन्दी में भाषण देना पड़ता है। दूसरा प्रश्न आपने जो यह रखा कि हिन्दी ही क्यों कोई दूसरी भारतीय भाषा क्यों नहीं ? तो मैं यह प्रश्न करता हूँ कि जो हमारे हिंदीतर क्षेत्रों के प्रधानमंत्री रहे हैं – चाहे आज के नरेंद्र मोदी हों चाहे पी वी नरसिम्हा राव जी हों चाहे मनमोहन सिंह जी हों उन्होने जनता के मध्य अपनी बात, अपने भाषण हिन्दी में दिये हैं, विशेषकर जब वोट मांगने जाते हैं जनता से। स्पष्ट है कि जब आप बिना हिन्दी बोले हिंदुस्तान के प्रधानमंत्री नहीं बन सकते तो हिन्दी तो अपने आप राष्ट्र भाषा हो गई है। इसके अलावा जब भारत का स्वतन्त्रता संग्राम चल रहा था तब link Language हिन्दी ही थी। जिस प्रकार हम आज मानते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अङ्ग्रेज़ी link Language

बन चुकी है, दुनिया भर में उसे स्वीकार किया गया है जबकि वह तीसरे – चौथे नंबर पर आती है। उसी प्रकार भारत में हिन्दी लिंक भाषा है। आजादी के बाद जब संसद में इस बात की चर्चा हुई कि किस भाषा को राजभाषा का दर्जा दिया जाए तो उस समय चाहे बंगाल के सुभाष चंद्र बोस हों, पंजाब के लाला लाजपत राय हों, गुजरात के सरदार वल्लभ भाई पटेल हों या महात्मा गांधी हों सबने एक स्वर में इस बात का समर्थन किया कि हिन्दी ही देश में सर्वाधिक बोली व समझी जाने वाली भाषा है अत: उसे भारत के राष्ट्र भाषा का दर्जा देना चाहिए।

प्रश्न : मैंने आपके बारे में जितना भी पढ़ा उसमें पाया कि साहित्यिक संस्कार आपको अपने माता – पिता जी के माध्यम से घर पर ही मिला। हिन्दी भाषा की कई विधाओं में आपकी दक्षता है। आपने भी पढ़ा होगा कि छायावाद, उपन्यास, आलोचना, सौंदर्यशास्त्र, मनोविज्ञान आदि भारत में यूरोपीय साहित्य की देन है। मेरी जिज्ञासा यह है कि भारतीय साहित्य का अपना अन्वेषण कितना और किस प्रकार से रहा है ?

जवाब : अनुपमा जी आपने इस प्रश्न कि शुरुआत बड़े ही अच्छे तरीके से कि , जो आपने कहा कि हिन्दी मुझे अपने परिवार से मिली है और यह सच बात है कि हिन्दी को मैं अपने संस्कार की भाषा मानता हूँ। हिन्दी में विशेष रूप से मैंने कोई पढ़ाई नहीं की है परंतु यह मेरे संस्कार की भाषा मेरे आत्मा की भाषा है। मैं अपना दृष्टिकोण यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ कि जो आपने प्रश्न रखा कि सौंदर्यशास्त्र, मनोविज्ञान,या उपन्यास की परंपरा आदि यूरोपियन साहित्य की भारत में देन है। हम इस बात से इनकार नहीं कर सकते कि यूरोपियन साहित्यकारों का, उनकी भाषाओं का या फिर उनकी विधाओं का भारतीय साहित्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। व्यापक रूप से पड़ा है। लेकिन जहां तक शास्त्रों की बात है या विधाओं के बात है ये विधाएँ और शास्त्र वैदिक काल से हमारे यहां उपलब्ध हैं। अगर हम नाट्यशास्त्र की बात करें तो दुनिया में नाटककार के रूप में सर्वाधिक नाम किसका लिया जाता है – शेक्सपियर का, परंतु इनका समय तो 16वीं 17वीं सदी का हैं जबकि भारत में नाट्य परंपरा का सूत्रपात भरत मुनि ने किया जिनका समय बलदेव उपाध्याय ने द्वितीय शती माना है तथा 'नाट्यशास्त्र' को पंचम वेद माना जाता है। भरत मुनि का जो नाट्यशास्त्र है उसमें नौ के नौ रस मिलते हैं। जिन सारी विधाओं की आपने बात की है उन सबका हमारे वेदों और शास्त्रों में बहुत पहले से ही स्थान है और शीर्ष स्थान है। यह भी सत्य है कि हमारे यहाँ की जो परंपरा रही है वह आचार्य कुल की परंपरा रही है यूरोपियन या पाश्चात्य देशों में ऐसी परंपरा न होकर शोध की परंपरा विकसित हुयी जिससे हम अनभिज्ञ रहे। जब शोध के प्रारूप और नवीन लेखन पद्धति दूसरे देशों में होती रही और हमारे भारतीय आलोचक या लेखक कह लीजिये इस पर ध्यान देने लगे तो प्रभावित होकर उन्होने भी इस पर अपना अधिकार जमाना चाहा और परिणाम स्वरूप उसका नाम यह हो गया कि यह यूरोपीय साहित्य की देन है परंतु ऐसा बिलकुल नहीं है यह सब हमारे यहाँ बहुत पहले से उपलब्ध रहा परंतु शोध की दृष्टि से हम बहुत पीछे रहे हैं। हम यह कह सकते हैं कि हिन्दी में जो छायावाद है स्त्री विमर्श है, मनोविज्ञान या अन्य जो भी विधा, साहित्य है उसे स्ट्रक्चर देने में यूरोपियन साहित्यकारों का बहुत योगदान है। इसका बहुत प्रभाव भी रहा है। अब प्रवासी साहित्यकार के नाते अगर मैं यह कहूँ कि भारत में जो शोध कार्य हो रहा है प्रवासी साहित्य का इतिहास जानने में वे आरंभ वहीं से करते हैं कि जब बंधुआ मजदूर के रूप में भारतीयों को ले जाया गया और मॉरीशस, फ़िजी, गुयाना, त्रिनिदाद आदि देशों में तो बात हम वहीं से शुरू करते हैं, परंतु शोध की जो पद्धति है वह हमारे यहाँ बहुत पुरानी नहीं है तो यहाँ भी हम उसी का अनुसरण करते हैं। परंतु आप अगर व्यक्तिगत मुझसे पूछती हैं तो मैं यही कहूँगा कि – "अपि स्वर्णमयी लंका न में लक्ष्मण रोचते। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ॥" तो प्रवासी साहित्य की बात करें तो इसकी परंपरा बहुत पुरानी है। भगवान श्री कृष्ण तो जन्म लेते ही प्रवासी हो गए थे, प्रिय प्रवास भी इसी संदर्भ में लिखा गया है। उस समय भी बहुत साहित्य रचा गया, बहुत से भाव आए। उस समय की जो कल्पना रही जो भाव रहे उससे जुड़कर लोग आज भी लिख रहे हैं अपनी रचनाओं में उनका उल्लेख करते हैं। ढाई तीन सौ साल से ही वैश्वीकरण का दौर शुरू हो गया था। इस प्रकार से गजल और शेरो शायरी, हम कहते हैं कि फरजिया से आई भारत में। इसका मतलब ये नहीं कि

इसके पहले भारत में यह सब लिखा ही नहीं जा रहा था। इनकी शायरी हमारे दोहे हुआ करते थे, इनकी रुबाइयाँ हमारी चौपाइयाँ हुआ करती थी, तो ग्लोबलाइज़ेशन वहीं से शुरू हुआ पर हिंदुस्तान तो इस मामले में इतना विकसित और समृद्ध रहा है कि उसने सबको बड़ी सहजता से आत्मसात किया है। चाहे साहित्य हो, चाहे लोग हों, चाहे परम्पराएँ हों, चाहे त्यौहार हों। आज विश्व का शायद ही कोई ऐसा त्यौहार है जो भारत में नहीं मनाया जाता। यह भारत का वैशिष्ट्य है कि वह सबको अपनाता है। अगर अच्छा और हितकारी कुछ भी है तो वह सब लेने में कुछ गलत नहीं हैं और भारत को इस बात से परहेज नहीं है कि यूरोपीय साहित्य का प्रभाव भारतीय साहित्य पर गहराई से पड़ा है। बावजूद इसके यह तात्पर्य बिलकुल नहीं है कि वैसी परम्पराएँ या वैसा सृजन हमारे यहाँ नहीं हुआ था।

प्रश्न : विगत दो दशक से प्रवासी साहित्यकारों का जो समागम हिन्दी साहित्य में रहा है वह अभिनंदनीय है। भारत के भिन्न भिन्न शैक्षिक संस्थाओं में शोध कार्य कराये जा रहे हैं, नेट के पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है, प्रवासी साहित्य केंद्र विनिर्मित किए जा रहे हैं। एक अलग ही परचम दिख रहा है लेकिन इस सब के मध्य एक वैचारिक मतभेद भी चल रहा है वह यह कि प्रवासी साहित्य को स्थापित करने में यूरोपीय और अमेरिकी देश के साहित्यकारों का ही योगदान सर्वाधिक है। क्या गिरमिटिया साहित्य को प्रवासी साहित्य के अंतर्गत रखा जाना उचित है ?आप की क्या राय है ?

जवाब : देखिये दुविधा क्या है लोगों के अंदर कि प्रवासी तो वो लोग हैं जो भारत से बाहर गए हैं। लेकिन जो गिरमिटिया समुदाय है जो तीन या चार पीढ़ियों से वहाँ रह रहे हैं, उस पीढ़ी को प्रवासी नहीं कह सकते क्योंकि उनका जन्म ही वहाँ पर हुआ है। ऐसे बहुत से विद्वान और लेखक हैं, जो इस समय लिख रहे हैं उनको प्रवासी साहित्य के अंतर्गत ही मान लिया जा रहा है। इस पर लोगों की आपत्ति अवश्य है कि इसे भारतेतर कहा जाना चाहिए, या इनके लिए एक नये शब्द का निर्माण करना आवश्यक है। लेकिन मैं समझता हूँ कि यह जो शब्द है प्रवासी उसका लिट्रेट मिनिग न लिया जाये। इसका शब्दार्थ न लिया जाये क्योंकि प्रवासी एक प्रकार कि ब्रांडिंग बन गई है। प्रवासी साहित्य कि जब बात आती है तो उसका अभिप्राय यह हो जाता है कि भारत से जो बाहर लिखा जा रहा है वह प्रवासी साहित्य है। जब भारत में मंत्रालय बना – प्रवासी मंत्रालय। तो इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि वह मात्र प्रवासी भारतीयों के लिए बना है। वह विदेशियों के लिए भी बना है। हमारे बच्चे यहाँ पर जन्में हैं उनका ब्रिटिश पासपोर्ट है, पर इसका मतलब यह नहीं है कि वे अपने आप को प्रवासी नहीं मानते। वे अपने आपको खुद भारत से जोडेकर ही देखते हैं। इसलिए यही कहना चाहूँगा कि प्रवासी के शब्दार्थ पर न जाया जाये उसकी ब्रांडिंग को माना जाए। प्रवासी साहित्य का नाम आते ही यह स्पष्ट हो जाता है कि जो भारत से बाहर लिखा जा रहा है वह प्रवासी साहित्य है। नाम आप उसको कुछ भी दे दें।

प्रश्न : आपने जो कुछ कहा उससे सहमत हूँ पर प्रश्न वहीं रह गया कि मॉरीशस में आज के परिप्रेक्ष्य में जो साहित्य लिखा जा रहा है अब चाहे अभिमन्यु अनत हो गए, रामदेव धुरंधर या फिर राज हीरामन जी इनके लिखे हुये को आप इस कोटि में देखना चाहेंगे ? प्रवासी ही या उससे इतर?

जवाब : मेरा ख्याल है कि यह शोध कर्ताओं का काम है कि वे क्या कहना चाहेंगे। मैं यह अवश्य कहूँगा कि ये प्रवासी साहित्य का एक अंग हैं। गिरमिटिया साहित्य को अगर आप पढ़ेंगे तो उसमें नोस्टेल्ज़िया कहीं अधिक मिलेगा। बीस से पच्चीस वर्षों के अंतराल में जो लोग लिख रहे हैं हिन्दी की अभिवृद्धि में उनका योगदान बहुत ज्यादा है। उसका कारण मैं यह भी मानता हूँ कि जब

हम हिन्दी भाषा के वैश्वीकरण की बात करते हैं तो उसका मापदंड यह रख सकते हैं इस साहित्य ने वैश्वीकरण में अपनी अतुल्य भूमिका निभाई है । गिरमिटिया को मैं प्रवासी में ही मानता हूँ क्योंकि जब भी बात उठती है प्रवासी साहित्य की तो आरंभ गिरमिटिया देशों के साहित्य से ही होता है।

प्रश्न : इसी संदर्भ में एक और बात कि कुछ साहित्यकारों को प्रवासी शब्द से परहेज है । उन्हें इस बात पर आपत्ति है कि उनके लिए प्रवासी शब्द का प्रयोग न किया जाए । क्या आपको भी लागता है कि विदेश में रहकर जो भारतीय मूल के लोग साहित्य सृजन कर रहे हैं, उन्हें प्रवासी साहित्यकार न कहा जाये ?

जवाब : अनुपमा जी मैं मानता हूँ कि इसके दो पक्ष हैं । अगर मेरा व्यक्तिगत मत लीजिये तो मैं कहूँगा कि अगर इसका प्रवासी साहित्य नाम न होता तो प्रवास में लिखे जा रहे साहित्य को अपनी पहचान नहीं मिलती । जैसे बाल साहित्य है, स्त्री साहित्य है, दलित साहित्य है तो इन सबका वर्गीकरण साहित्य के भीतर ही हुआ है और इसी प्रकार प्रवासी साहित्य भी है जिसके कारण हमें एक अपनी पहचान मिली है और जो लेखक या साहित्यकार यह कहता है कि वह अपने को प्रवासी साहित्यकार नहीं मानता उनमें से अधिकांश लोगों को आप देखेंगे कि आज उनकी पहचान प्रवासी साहित्यकार के रूप में ही बनी है । इस पहचान से हमारी जो नई पीढ़ी है उसे आसानी होती है कि वे उस साहित्य को देखना व समझना चाहते हैं जो भारत से बाहर लिखा गया है । इससे उन्हें भी एक संदर्भ मिल जाता है तथा हमें भी पहचान मिल जाती है । दूसरी बात यह भी है कि इस प्रकार के मुद्दों में मुझे राजनीतिकरण कि गूंज ज्यादा आती है कि हम प्रवासी नहीं हैं, हम भारतीय हैं और मूलधारा से जुड़ना चाहते हैं । मैं अपने आपको उससे परे रखता हूँ । मैं यह मानता हूँ कि प्रवासी जगत प्रवासी साहित्य एक ब्रांड है और आगे बढ़ने के लिए और नई पीढ़ी को उससे जोड़ने के लिए आसान माध्यम है ।

प्रश्न 6 : इसी शृंखला में एक बात और उठती है कि साहित्य कल भी लिखा जा रहा था और आज भी लिखा जा रहा है। जब हम जैनेन्द्र की कहानियों को पढ़ें तो बाल मनोविज्ञान के कई संदर्भ सामने आते हैं, आप प्रेमचंद को पढ़ेंगे तो उनके उपन्यास निर्मला, गबन सबमें स्त्री विमर्श के कई संदर्भ उद्घाटित हुये हैं, अमृतलाल नगर का नाच्यो बहुत गोपाल में दलित विमर्श के कई पक्ष आए हैं । ये समस्त साहित्यकारों ने समाज के विसंगतियों को लिया है और उस पर लिखा है पर किसी ने अपना कोई खेमा नहीं बनाया कि हम किस विमर्श के या फिर किस वर्ग के साहित्यकार हैं जबकि आज आप देखें तो साहित्य से अधिक विमर्श ही रचे जा रहे हैं । एक साहित्यकार होने के नाते आपको क्या लगता है कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में साहित्य का इस तरह का विभाजन उसके हित में होगा ?

जवाब : अनुपमा जी मैंने पहले भी इंगित किया कि यह एक प्रकार का राजनीतिकरण है । उसके अतिरिक्त जो व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएं हैं, अपनी पहचान स्थापित करने के लिए यह भी बड़ी भूमिका निभाते हैं इस संदर्भ में । साथ ही विद्यार्थियों और शोधकर्ताओं का भी कार्य है कि वे जब शोध प्रबंध लिखते हैं तो वे इसे बाँट देते हैं । वह पहचान साहित्यकार स्वयं नहीं बनाता । यदि हम प्रवास में आकर किसी ऐसी रचना का सृजन न करें जिसमें प्रवास का कोई संदर्भ हो या हमारे नए परिवेश का कोई संदर्भ हो तो वह अपूर्ण ही रहता है । बाहर आकर कुछ भी लिख देने का तात्पर्य यह नहीं की वह भी प्रवासी साहित्य हो गया क्योंकि आपने उसे दिल्ली में नहीं लंदन में लिखा है । उस साहित्य के अंदर वह भाव अवश्य होने चाहिए जो यह स्पष्ट कर सकें कि यह प्रवासी साहित्य है।

प्रश्न : क्षमा सहित मैं आपको यहीं थोड़ा रोकना चाहती हूँ , हम प्रवास का जो भी साहित्य पढ़ते हैं , अब चाहे वह अमेरिकी साहित्य हो या यूरोपीय साहित्य हो, उसमें नोस्टेल्ज़िया कि बहुलता है जबकि स्थानीय परिवेश व देश का पूर्ण चित्रण करने में बहुत कम ही साहित्यकार सफल हो पा रहे हैं, ऐसा क्यों ?

जवाब : हो सकता है कि यह एक शुरुआत हो। क्योंकि जो भारत से विदेश जाते हैं और लिखना आरंभ करते हैं तो उनके सृजन का आरंभ **नोस्टेल्ज़िया** से ही होता है। हम लोग तो प्रेम कविताओं से या फिल्मी गीतों के माध्यम से सीखकर कुछ जोड़कर लिखते हैं। धीरे धीरे मित्रों व पाठकों के प्रोत्साहन से हमें एक दृष्टि मिलती है और हमारी कलम आगे बढ़ने लगती है साहित्य और लेखन की ओर। पिछले बीस सालों में जो लेखन हुआ है प्रवासी साहित्य का, वह वैश्विक परिप्रेक्ष्य में हुआ है। इसीलिए मैं कह सकता हूँ कि हिन्दी साहित्य के वैश्वीकरण में प्रवासी साहित्यकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है क्योंकि इनके साहित्य में वह नहीं लिखा जा रहा है जो भारत में हो रहा है अपितु वह लिखा जा रहा है जो दुनिया भर में हो रहा है।

प्रश्न : हिन्दी को वैश्विक स्वरूप दिलाने में भिन्न भिन्न संस्थाओं का भी विशेष योगदान है। यूके हिन्दी समिति की स्थापना आपने की है। वातायन में भी आपका योगदान है। इसी प्रकार विश्व हिन्दी सचिवालय मॉरीशस भी है। आपको क्या लगता है कि कितनी पारदर्शिता के साथ ये संस्थाएं अपना दायित्व निर्वहन कर रही हैं ?

जवाब : इन संस्थाओं का बहुत बड़ा योगदान है क्योंकि हम कोई भी कार्य करें किसी भी क्षेत्र में करें उसे व्यापक बनाने के लिए किसी न किसी मंच की आवश्यकता होती है। बिना मंच के न आप लेखक बन सकते हैं, न कलाकार बन सकते हैं, न व्यापार कर सकते हैं, न राजनीति में जा सकते है । तो ये संस्थाएं हमारी माध्यम होती हैं जो शीर्षस्थ पर पहुंचाती हैं।

प्रश्न : आप हिन्दी के इतने बड़े साधक, साहित्य सेवी और अध्येता हैं। साथ ही बिजनेस कॉलेज के निदेशक भी हैं। हिन्दी के प्रति जो आपका समर्पण है क्या इसे आप कॉलेज में भी प्रकट करते हैं ? आपके कितने छात्र आपकी कविता और कहानी के पाठक हैं ? साथ ही आपके कॉलेज में हिन्दी का क्या स्थान है ?

जवाब : ज़ीरो। पहली बात है कि मैं ऑक्सफोर्ड बिजनेस कॉलेज में हूँ और उसका डायरेक्टर हूँ। मैं हमेशा से कहता रहा हूँ कि अङ्ग्रेज़ी मेरा प्रोफेशन है और हिन्दी मेरा पैशन। एक सूत्र मुझे मिला था –

“प्रगति अगर अङ्ग्रेज़ी है, तो हिन्दी है संस्कार।

हिन्दी अपने हाथ बनाओ, अङ्ग्रेज़ी हथियार॥

देखो फिर कैसे होता है हर सपना साकार॥

यह बात मैं ब्रिटेन की जो युवा पीढ़ी है उनको भी बताता हूँ कि हिन्दी अलग तरह की हमारी संस्कार की भाषा है। यहाँ समर कैंप जब चलता है तो विश्वभर से लोग आते हैं अङ्ग्रेज़ी पढ़ने के लिए। रशिया से, सऊदी अरब से, कतार से सरकार उन्हें स्पोंसर करती हैं। जब हम उनसे पूछते हैं कि आप अङ्ग्रेज़ी क्यों पढ़ रहे हैं तो हमेशा से एक ही जवाब की अङ्ग्रेज़ी पढ़ने से हमें अच्छी नौकरियाँ मिलती हैं और अंतरराष्ट्रीय व्यापार में बहुत सहूलियत होगी इस करण हम अङ्ग्रेज़ी पढ़ते हैं। जब मैं विदेशी मूल के हिन्दी पढ़ने वाले छात्र से यह पूछता हूँ कि आप हिन्दी क्यों पढ़ रहे हैं तो वे कहते हैं कि मैं भारत को जानना चाहता हूँ , भारतीय संस्कृति को समझना चाहता हूँ। इसके माध्यम से हम योग, वैदिक ज्ञान या शास्त्रीय संगीत आदि को बखूबी जान सकते हैं। अब आप बताइये कि सम्मान किस भाषा के प्रति अधिक है हिन्दी या अङ्ग्रेज़ी के। अब बात हमारे कॉलेज की करें तो हमारे यहाँ भारतीय विद्यार्थी नहीं हैं। सब विश्व के अलग अलग देशों से आए हैं। ये दो चार साल के लिए आते हैं और पढ़ाई पूरी कर चले

जाते हैं। उन्हें हम हिन्दी पढ़ने पर ज़ोर नहीं देते क्योंकि यह स्वेच्छा है। परंतु हमारे यहाँ हिन्दी कार्यक्रम बहुत होते हैं। हम कलम का कार्यक्रम कराते हैं। भारत से हिन्दी के साहित्यकार आते हैं तो ये उनके साथ रूबरू होते हैं। हिन्दी ज्ञान प्रतियोगिता का आयोजन करते हैं और उसमें प्रतिभागी हिन्दी समिति के विद्यार्थी होते हैं।

प्रश्न : अब आते हैं आपके साहित्य पर। आपकी कहानी – तिरस्कार। अद्भुत कहानी है। पहले तो यही कि कितनी काल्पनिकता और कितना यथार्थ है इसमें ? राखी और सिमरन की जो मन: स्थिति है, सिमरन और रॉबर्ट का जो संवाद है वह पाठक को आद्यंत बांधे रखने में सक्षम है। क्या नस्लवाद या रंगभेद की समस्या आज भी उस समाज में व्याप्त है ?

जवाब : यह कहानी तो काल्पनिक है परंतु जो संवाद पात्रों के मध्य है वह यथार्थपरक है। रॉबर्ट और सिमरन जिस प्रकार बहस करते हैं वह सत्य घटना है। आज भी इस समाज में रंग भेद की समस्या व्याप्त तो है परंतु इतना खुलेपन में नहीं है। शालीन लोग हैं। मन में बात रहती अवश्य है परंतु बेइज्जती नहीं करते। यह भाव पहले की अपेक्षा आज बहुत कम हो चुकी है परंतु अंदरूनी तौर पर तो अभी भी व्याप्त है।